अनुवादक : डॉ. आफ़ताब अहमद
व्याख्याता, हिंदी-उर्दू, कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयॉर्क

चारपाई और कल्चर

मुश्ताक़ अहमद यूसुफ़ी

एक फ़्रांसीसी चिन्तक कहता है कि संगीत में मुझे जो बात पसंद है वह दरअसल वो सुन्दर महिलाएँ हैं जो अपनी नन्ही-नन्ही हथेलियों पर ठोड़ियाँ रखकर उसे सुनती हैं। यह कथन मैंने अपने बचाव में इसलिए उद्धृत नहीं किया कि मैं जो क़व्वाली से विमुख हूँ तो इसकी असल वजह वो बुज़ुर्ग हैं जो महफ़िल-ए-समाअ[1] की शोभा बढ़ाते हैं। और न मेरा यह दावा कि मैंने प्यानो और पलंग के दरमियान कोई सांस्कृतिक सम्बन्ध दरयाफ़्त कर लिया है। हालाँकि मैं जानता हूँ कि पहली बार बान की खुर्री चारपाई की चरचराहट और अदवाइन का तनाव देखकर कुछ नवागंतुक पर्यटक इसे सारंगी के परिवार का कोई एशियाई साज़ समझते हैं। कहना यह था कि मेरे नज़दीक चारपाई के आकर्षण का कारण वो चिंतामुक्त व मनमौजी लोग हैं जो उस पर उठते बैठते और लेटते हैं। इसके अध्ययन से वैयक्तिक और राष्ट्रीय स्वभाव के परखने में मदद मिलती है। इसलिए कि किसी व्यक्ति की शालीनता और शराफ़त का अंदाज़ा आप सिर्फ़ इससे लगा सकते हैं कि वह फ़ुर्सत के क्षणों में क्या करता है और रात को किस प्रकार के सपने देखता है।

चारपाई एक ऐसी आत्मनिर्भर संस्कृति की अंतिम निशानी है जो नए तक़ाज़ों और ज़रूरतों पर पूरा उतरने के लिए नित नई चीज़ें ईजाद करने की क़ायल न थी। बल्कि ऐसे नाज़ुक मौक़ों पर पुरानी चीज़ों में नई खूबियाँ दरयाफ़्त करके मुस्कुरा देती थी। उस युग के रंगारंग सामाजिक जीवन की कल्पना चारपाई के बिना मुमकिन नहीं। इसका ख़याल आते ही मस्तिष्क के क्षितिज पर बहुत से सुहाने दृश्य उभर आते हैं------- उजली-उजली ठंडी चादरें, ख़स के पंखे , कच्ची मिट्टी की सन्न-सन्न करती कोरी सुराहियाँ, छिड़काव से भीगी ज़मीन की सोंधी-सोंधी लपट और आम के लदे-फंदे दरख़्त जिनमें आमों के बजाय लड़के लटके रहते हैं------और उनकी छाँव में जवान जिस्म की तरह कसी-कसाई एक चारपाई जिसपर दिन भर शतरंज की बिसात या रमी की फड़ जमी और जो शाम को दस्तरख़्वान बिछाकर खाने की मेज़ बना ली गई। ज़रा ग़ौर से देखिए तो यह वही चारपाई है जिसकी सीढ़ी बनाकर सुघड़ बीवियाँ मकड़ी के जाले और चुलबुले लड़के चिड़ियों के घोंसले उतारते हैं। इसी चारपाई को ज़रुरत पड़ने पर पट्टियों से बाँस बाँधकर स्ट्रेचर बना लेते हैं और बिजोग पड़ जाए तो इन्हीं बाँसों से एक-दूसरे को स्ट्रेचर के क़ाबिल बनाया जा सकता है। इसी तरह मरीज़ जब खाट से लग जाए तो तीमारदार उत्तरोल्लिखित के बीच में बड़ा सा सूराख़ करके प्रथमोल्लिखित की मुश्किल आसान कर

[1] महफ़िल-ए-समाअः क़व्वाली की महफ़िल (अनु.)

देते हैं। और जब सावन में ऊदी-ऊदी घटाएँ उठती हैं तो अदवाइन खोलकर लड़कियाँ दरवाज़े की चौखट और माँ-बाप चारपाइयों में झूलते हैं, इसी पर बैठकर मौलवी साहब क़मची (छड़ी) के ज़रिए नैतिकता के बुनियादी उसूल ज़ेहननशीन कराते हैं। इसी पर नवजात शिशु ग़ावं-ग़ावं करते, चुंधियाई हुई आँखें खोलकर अपने माँ-बाप को देखते और रोते हैं और इसी पर देखते-ही देखते अपने प्यारों की आँखें बंद हो जाती हैं।

अगर यह अंदेशा न होता कि कुछ सज्जन इस निबंध को चारपाई-प्रयोग के उपाय का परचा समझ लेंगे तो इस मामले में कुछ और विस्तार से लिखता। लेकिन जैसा कि पहले इशारा कर चुका हूँ, यह निबंध उस सांस्कृतिक निशानी का क़सीदा नहीं, मर्सिया है। फिर भी एहतियात के विचार से इतना स्पष्टीकरण आवश्यक है कि: *हम इस नेमत के मुनकिर हैं न आदी*[i] ।

नाम के लिहाज़ से अगर पाए चार हों तो बहुत अच्छी बात है वरना इससे कम भी हों तो खुदा के बन्दों के काम बंद नहीं होते। इसी तरह पायों के आकार और रूप का भी कोई निर्धारित नमूना नहीं। इन्हें सामने रखकर आप मूढ़-से मूढ़ लड़के को यूक्लिडियन ज्यामिति की सारी आकृतियाँ समझा सकते हैं। और इस मुहिम पर सफल होने के बाद आपको अहसास होगा कि अभी कुछ आकृतियाँ रह गई हैं जिनका न सिर्फ़ यूक्लिडियन ज्यामिति बल्कि अमूर्त कला में भी कोई उल्लेख नहीं। देहात में ऐसे पाए बहुत आम हैं जो आधे पट्टियों से नीचे और आधे ऊपर निकले होते हैं। ऐसी चारपाई का उल्टा-सीधा दरयाफ़्त करने का आसान उपाय यह है कि जिस तरफ़ बान साफ़ हो वह हमेशा "उल्टा" होगा। प्रस्तुत लेखक ने ऐसे अनगढ़ पाए देखे हैं जिनकी बनावट में बढ़ई ने केवल यह सिद्धांत मद्देनज़र रखा होगा कि बसूला चलाये बिना पेड़ को अपनी प्राकृतिक हालत में ज्यों-का-त्यों पट्टियों से जोड़ दिया जाए। लेकिन साथ ही साथ हमारी नज़र से ख़राद के बने ऐसे सुडौल पाए भी गुज़रे हैं जिन्हें चूड़ीदार पाजामा पहनाने को जी चाहता है। इस प्रकार के पायों से स्वर्गीय मंटो को जो प्रगाढ़ प्रेम रहा होगा उसकी अभिव्यक्ति उन्होंने अपने एक दोस्त से एक मेम की सुन्दर टाँगें देखकर अपनी विशेष शैली में की। कहने लगे:

"अगर मुझे ऐसी चार टाँगें मिल जाएँ तो उन्हें कटवाकर अपने पलंग के पाए बनवा लूँ।"

ग़ौर कीजिए तो बहस-मुबाहिसे और शास्त्रार्थ के लिए चारपाई से बेहतर कोई जगह नहीं। इसकी बनावट ही ऐसी है कि उभय पक्ष आमने-सामने नहीं बल्कि आम तौर पर अपने विरोधी की पीठ का सहारा लेकर आराम से बैठता है। और बहस-तकरार और तर्क-कुतर्क के लिए इससे बेहतर बैठन-शैली संभव नहीं। क्योंकि देखा गया है कि उभय पक्ष को एक दूसरे की सूरत नज़र न आये तो कभी आपे से बाहर नहीं होते। इसी आधार पर मेरा काफ़ी अरसे से यह विचार है कि अगर अंतर्राष्ट्रीय समझौता वार्ताएँ गोल मेज़ पर न हुई होतीं तो लाखों जानें बरबाद होने से बच जातीं। आपने खुद देखा होगा कि लदी-फँदी चारपाइयों पर लोग पेट भर के अपनों की ग़ीबत[ii] करते हैं मगर दिल में मैल नहीं आता। इसलिए कि सभी जानते हैं कि ग़ीबत उसी की होती

---

[i] मजाज़ी इश्क़ भी इक शै है 'हसरत' // हम इस नेमत के मुनकिर हैं न आदी ('हसरत' मोहानी)

[ii] ग़ीबत: पीठ पीछे निंदा करना ; चुग़ली करना । (अनु.)

है जिसे अपना समझते हैं। और कुछ यूँ भी है कि हमारे यहाँ ग़ीबत का प्रयोजन न तो प्रेमसूत्र को तोड़ना है न वास्तविक हालात का बयान बल्कि महफ़िल में *लहू गर्म रखने का है इक बहाना*[i]

लोग घंटों चारपाई पर कसमसाते रहते हैं मगर कोई उठने का नाम नहीं लेता। इसलिए कि हर आदमी अपनी जगह बख़ूबी जानता है कि अगर वह चला गया तो फ़ौरन उसकी ग़ीबत शुरू हो जाएगी। चुनांचे पिछले पहर तक मर्द एक-दूसरे की गर्दन में हाथ डाले बहस करते हैं और औरतें गाल से गाल भिड़ाए कचर-कचर लड़ती रहती हैं। अंतर केवल इतना है कि मर्द पहले बहस करते हैं, फिर लड़ते हैं। औरतें पहले लड़ती हैं और बाद में बहस करती हैं। मुझे औरतों वाला तरीक़ा अधिक तर्कसंगत नज़र आता है, इसलिए कि इसमें आइन्दा समझौते और मेल-मिलाप की गुंजाइश बाक़ी रहती है।

रहा यह सवाल कि एक चारपाई पर एक साथ कितने लोग बैठ सकते हैं तो निवेदन है कि चारपाई की मौजूदगी में हमने किसी को खड़ा नहीं देखा, लेकिन इस तरह के सैद्धांतिक मसलों में आँकड़ों पर ज़रुरत से ज़्यादा ज़ोर देने से कभी-कभी अजीबो-ग़रीब परिणाम सामने आते हैं। आपने ज़रूर सुना होगा कि जिस समय मुसलमानों ने उन्दुलस (स्पेन) फ़तह किया तो वहाँ के बड़े गिरजाघर में चोटी के मसीही विद्वान व धर्मगुरु इस मसले पर अत्यंत गंभीरता से गुफ़्तगू कर रहे थे कि सूई की नोक पर कितने फ़रिश्ते बैठ सकते हैं?

हम तो इतना जानते हैं कि तंग-से-तंग चारपाई पर भी लोग एक दूसरे की तरफ़ पाँव किये उर्दू वर्तनी के ॥ की शक्ल में सोते रहते हैं। चंचल नारी के चीते जैसा अजीत शरीर हो या किसी वृद्धा की कमान जैसी मुड़ी हुई कमर ------यह अपने आपको हर ढाँचे के अनुसार ढाल लेती है। और न सिर्फ़ यह कि इसमें बड़ा फैलाव है बल्कि इतनी लचक भी है कि आप जिस आसन चाहें बैठ और लेट जाएँ। बड़ी बात यह है कि बैठने और लेटने की जो दरमियानी सूरतें हमारे यहाँ सदियों से प्रचलित हैं उनके लिए यह ख़ास तौर से उचित है। यूरोपियन फ़र्नीचर से मुझे कोई चिढ़ नहीं, लेकिन इसको क्या कीजिए कि एशियाई स्वभाव आधा बैठे होने और आधा लेटे होने के जिन कोणों और ऐश्वर्यों का आदी हो चुका है, वो उसमें नहीं मिलते। मिसाल के तौर पर सोफ़े पर हम उकड़ूँ नहीं बैठ सकते। कोच पर दस्तरख़्वान नहीं बिछा सकते। स्टूल पर क़ैलूला[ii] नहीं कर सकते। और कुर्सी पर, बक़ौल अख़लाक अहमद, उर्दू में नहीं बैठ सकते।

एशिया ने दुनिया को दो नेमतों से परिचित कराया। चाय और चारपाई! और इनमें यह विशेषता सामान रूप से विद्यमान है कि दोनों सर्दियों में गर्मी और गरमियों में ठंडक पहुँचाती हैं। अगर गर्मी में लोग खुर्री चारपाई पर सवार रहते हैं तो बरसात में यह लोगों पर सवार रहती है और खुले में सोने के रसिया इसे अंधेरी रातों में बरामदे से आँगन और आँगन से बरामदे में उठाये फिरते हैं। फिर महावट में सर्दी और बान से बचाव के लिए रज़ाई और गद्दा निकालते हैं। मसल मशहूर है कि सर्दी रूई से जाती है या दूई से। लेकिन अगर ये ऐश्वर्य उपलब्ध न हों और सर्दी ज़्यादा और रज़ाई पतली हो तो ग़रीब-ग़ुरबा सिर्फ़ मंटो की कहानियाँ पढ़कर सो रहते हैं।

---

[i] झपटना, पलटना, पलटकर झपटना ॥ लहू गर्म रखने का है इक बहाना (अल्लामा इक़बाल)

[ii] क़ैलूलाः दोपहर के खाने के बाद थोड़ी देर सोना (अनु.)

अरबी में ऊँट के इतने नाम हैं कि दूरदर्शी मौलवी अपने होनहार शिष्यों को पास होने का यह गुर बताते हैं कि अगर किसी मुश्किल या कुढब शब्द के मतलब मालूम न हों तो समझ लो उसका मतलब ऊँट है। इसी तरह उर्दू में चारपाई की जितनी क़िस्में हैं उसकी मिसाल किसी और विकसित भाषा में शायद ही मिल सके:

खाट, खट्टा, खटिया, खटोला, उड़न-खटोला, खटोली, खट, छपरखट, खुर्रा, खुर्री, झिलगा, पलंग, पलंगड़ी, माच, माची, चारपाई, निवारी, मसहरी, मंजी।

यह अधूरी सी फ़ेहरिस्त सिर्फ़ उर्दू की व्यापकता ही नहीं बल्कि चारपाई की बहुमुखता की दलील है और हमारी संस्कृति में इसका उच्च स्थान और प्रतिष्ठा स्थापित करती है।

लेकिन चारपाई की सबसे ख़तरनाक क़िस्म वह है जिसके बचे-खुचे और टूटे-उधड़े बानों में सदाचारी व सज्जन पुरुष केवल अपनी आस्था-शक्ति के बल पर अटके रहते हैं। इस प्रकार के झिलंगे को बच्चे बतौर झूला और बड़े-बूढ़े भाव-विरेचन के उपकरण की तरह प्रयोग करते हैं। ऊँचे घरानों में अब ऐसी चारपाइयों को ग़रीब रिश्तेदारों की तरह कोनों-खुदरों में आड़े वक़्त के लिए छिपाकर रखा जाता है। ख़ुद मुझे मिर्ज़ा अब्दुल वदूद बेग के यहाँ एक रात ऐसी ही चारपाई पर बिताने का इत्तिफ़ाक़ हुआ जिस पर लेटते ही अच्छा-भला आदमी उर्दू वर्णमाला का नून-ग़ुन्ना (ں) बन जाता है।

इसमें दाख़िल होकर मैं अभी अपने पापों के कच्चे-चिट्ठे का निरीक्षण कर ही रहा था कि एकाएक अन्धेरा हो गया, जिसकी वजह संभवतः यह होगी कि एक दूसरा नौकर ऊपर एक दरी और बिछा गया। इस ख़ौफ़ से कि दूसरी मंज़िल पर कोई और सवारी न आ जाए, मैंने सिर से दरी फेंककर उठने की कोशिश की तो घुटने बढ़कर माथा चूमने लगे। खड़बड़ सुनकर मिर्ज़ा ख़ुद आये और चीख़कर पूछने लगे कि भाई आप हैं कहाँ? मैंने संक्षिप्त में अपने ठिकाने से अवगत कराया तो उन्होंने हाथ पकड़कर मुझे खींचा। उन्हें काफ़ी ज़ोर लगाना पड़ा, इसलिए कि मेरा सिर और पाँव बानों में बुरी तरह उलझे हुए थे और बान सिर से ज़्यादा मज़बूत साबित हुए। बड़ी मुश्किल से उन्होंने मुझे खड़ा किया।

और मेरे साथ ही बल्कि मुझसे पहले, चारपाई भी खड़ी हो गई!

कहने लगे "क्या बात है? आप कुछ बेक़रार से हैं। पेट गड़बड़ मालूम होता है।"

मेरे जवाब का इंतज़ार किये बग़ैर वे दौड़कर अपना बनाया हुआ चूरन ले आये और अपने हाथ से मेरे मुँह में डाला। फंकी मुँह में भरकर शुक्रिए के दो-चार शब्द ही कहने पाया हूँगा कि अचानक नज़र उनके मज़लूम मुँह पर पड़ गई जो हैरत से खुला हुआ था। मैं बहुत शर्मिंदा हुआ। लेकिन इससे पहले कि कुछ और कहूँ उन्होंने अपना हाथ मेरे मुँह पर रख दिया। फिर मुझे आराम करने का निर्देश देकर मुँह धोने चले गए।

मैं यह चारपाई ओढ़े लेटा था कि उनकी मँझली बच्ची आ निकली। तुतलाकर पूछने लगी:

"चचा जान! उकडूँ क्यों बैठे हैं?"

उसके बाद सब बच्चे मिलकर अंधा-भैंसा खेलने लगे। आख़िरकार उनकी अम्मी को हस्तक्षेप करना पड़ा।

"कमबख़्तो! अब तो चुप हो जाओ! क्या घर को भी स्कूल समझ रखा है?"

कुछ मिनट बाद किसी दूध पीते बच्चे के चिंघाड़ने की आवाज़ आई। मगर जल्द ही यह चीख़ें मिर्ज़ा की लोरियों में दब गईं जिनमें वे डाँट-डाँटकर नींद को आने का निमंत्रण दे रहे थे। कुछ क्षणों बाद मिर्ज़ा अपनी बाल रचना को सीने से चिमटाये मेरे पास आये और अत्यंत विनातीपूर्ण स्वर में बोलेः

"माफ़ कीजिये! आपको तकलीफ़ तो होगी मगर मुन्नू मियाँ आपकी चारपाई के लिए ज़िद कर रहे हैं। उन्हें दूसरी चारपाई पर नींद नहीं आती। आप मेरी चारपाई पर सो जाइए। मैं अपनी फ़ोल्डिंग चारपाई पर पड़ रहूँगा।"

मैंने ख़ुशी से मुन्नू मियाँ का हक़ मुन्नू मियाँ को सौंप दिया और जब उसमें झूलते-झूलते उनकी आँख लग गई तो उनके पिताश्री की ज़बान तालू से लगी।

अब सुनिए मुझपर क्या बीती। मिर्ज़ा ख़ुद तो फ़ोल्डिंग चारपाई पर चले गए मगर जिस चारपाई पर मुझे विशेष रूप से स्थानांतरित किया गया, उसका नक़्शा यह था कि मुझे अपने हाथ और टाँगें सावधानी से तह करके क्रमशः सीने और पेट पर रखनी पड़ीं। इस निर्जन रात्रि में कुछ देर पहले नींद से उर्दू वर्णमाला का अक्षर 'दोचश्मी हे' बना, यूनानी मेज़बान 'प्रोक्रस्टस' के बारे में सोचता रहा। उसके पास दो चारपाइयाँ थीं। एक लम्बी और दूसरी छोटी। ठिगने मेहमान को वह लम्बी चारपाई पर सुलाता और खींच-तानकर उसका शरीर चारपाई के बराबर कर देता। इसके बरअक्स लम्बे आदमी को वह छोटी चारपाई देता और शरीर के अतिरिक्त हिस्सों को काट-छाँटकर चिरनिद्रा में सुला देता।

उसके क्षेत्रफल के बारे में इतना निवेदन कर देना काफ़ी होगा कि अंगड़ाई लेने के लिए मुझे तीन-चार दफ़ा नीचे कूदना पड़ा। कूदने की आवश्यकता यूँ पड़ी कि उसकी ऊँचाई "दरमियाना" थी। यहाँ दरमियाना से हमारा तात्पर्य उन्नत भूमि की वह माक़ूल सतह है जिसको देखकर विचार पैदा होता है कि *न तू ज़मीं के लिए है न आसमाँ के लिए*।

हालाँकि कमनज़र निगाह को यह वर्गाकार नज़र आती थी मगर मिर्ज़ा ने मुझे पहले ही आगाह कर दिया था कि बारिश से पहले यह आयताकार थी। अलबत्ता बारिश में भीगने के कारण जो कान (टेढ़) आ गई थी, उससे मुझे कोई शारीरक कष्ट नहीं हुआ, इसलिए कि मिर्ज़ा ने कृपापूर्वक एक पाए के नीचे डिक्शनरी और दूसरे के नीचे मेरा जूता रखकर सतह समतल करदी थी। मेरा विचार है कि सभ्यता के जिस नाज़ुक दौर में ग़ैरतमंद मर्द चारपाई पर दम तोड़ने के बजाय मैदान-ए-जंग में दुश्मन के हाथों बिना कफ़न-दफ़न के मरना पसन्द करते थे, इसी क़िस्म की मानव-उत्पीड़क चारपाइयों का रिवाज होगा। लेकिन अब जबकि दुश्मन सयाने और चारपाइयाँ अधिक आरामदेह हो गई हैं, मरने के और भी माक़ूल और बाइज़्ज़त तरीक़े दरयाफ़्त हो गए हैं।

एक सतर्क अनुमान के अनुसार हमारे यहाँ एक औसत दर्जे के आदमी की दो-तिहाई ज़िन्दगी चारपाई पर बीतती है। और बाक़ी इसकी आकांक्षा में! ख़ास तौर पर औरतों की ज़िन्दगी इसी धुरी के गिर्द घूमती है जो जश्न समारोहों में बिछी चाँदनी भी है और सुख-दुःख की साथी भी। इसके सहारे वह सारी मुसीबतें सह लेती है। ख़ैर मुसीबतें तो मर्द भी जैसे-तैसे सह लेते हैं मगर औरतें इस लिहाज़ से प्रशंसनीय हैं कि उन्हें मुसीबतों के

अलावा मर्दों को भी सहना करना पड़ता है। आपने देखा होगा कि मई-जून की झुलसा देने वाली दोपहर में कुँवारियाँ-बालियाँ चारपाई के नीचे हंड-कुलहिया[i] पकाती हैं और ऊपर बड़ी-बूढ़ियाँ बीते हुए दिनों को याद करके एक-दूसरे का लहू गरमाती रहती हैं। (नियम है कि जैसे-जैसे स्मृति क्षीण होती जाती है, अतीत और भी सुहाना मालूम होता है।) इसी पर बूढ़ी सास माला के मनकों पर सुबह-शाम अपने पोतों और नातियों को गिनती रहती है और गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर दुआ करती है कि ख़ुदा उसका साया बहू के सिर पर सदा क़ायम रहे। संजोग से बहरी भी है। इसलिए बहू अगर साँस लेने के लिए भी मुँह खोले तो गुमान होता है कि मुझे कोस रही होगी। प्राचीन कथाओं की रूठी रानी इसी पर अपने जूड़े का तकिया बनाए अटवाटी-खटवाटी लेकर पड़ती थी और आज भी सुहागनें इसी की ओट में अदवाइन में से हाथ निकालकर पाँच अंगुल की कलाई में तीन अंगुल की चूड़ियाँ पहनती और गश्ती ज्योतिषियों को हाथ दिखाकर अपने बच्चों और सौतनों की संख्या पूछती हैं। लेकिन जिन भागवानों की गोद भरी हो, उनके भरे-पुरे घर में आपको चारपाई पर पोतड़े और सिवैयाँ साथ-साथ सूखती नज़र आएँगी। घुटनियों चलते बच्चे इसी की पट्टी पकड़कर ठुमक-ठुमककर चलना सीखते हैं और रात-बिरात पांयती से क़दमचों[ii] का काम लेते हैं। लेकिन जब थोड़ी समझ आ जाती है तो इसी चारपाई पर साफ़-सुथरे तकियों से लड़ते हैं। नामवर पहलवानों के बचपन की छान-बीन की जाए तो पता चलेगा कि उन्होंने क़ैंची और धोबीपाट जैसे ख़तरनाक दाँव इसी सुरक्षित अखाड़े में सीखे।

जिस ज़माने में वज़न करने की मशीन ईजाद नहीं हुई थी तो शालीन औरतें चूड़ियों के तंग होने और मर्द चारपाई के बान के दबाव से दूसरों के वज़न का अनुमान लगाते थे। उस ज़माने में चारपाई सिर्फ़ शरीर-तुला ही नहीं बल्कि पुण्य-तुला भी थी। नतीजा यह कि जनाज़े को कन्धा देने वाले चारपाई के वज़न के आधार पर दिवंगत के जन्नती या उसके विपरीत होने की घोषणा करते थे[iii]। यह कोई ढकी-छुपी बात नहीं कि हमारे यहाँ दुबले आदमी की दुनिया और मोटे का परलोक आम तौर से ख़राब होता है।

भारतीय उपमहाद्वीप में कुछ इलाक़े ऐसे भी हैं जहाँ अगर चारपाई को आसमान की तरफ़ पांयती करके खड़ा कर दिया जाए तो पड़ोसी मातमपुरसी को आने लगते हैं। शोक का यह प्रतीक बहुत पुराना है हालाँकि अन्य इलाकों में यह लम्बवत (।) नहीं, क्षैतिज अवस्था (—) में होती है। अब भी घने मुहल्लों में औरतें इसी सरल रूपक का सहारा लेकर कोसती सुनाई देंगी।" या अल्लाह! तन-तन कोढ़ टपके। मचमचाती हुई खाट निकले!" दूसरा भरपूर जुमला श्राप ही नहीं बल्कि ज़रुरत पड़ने पर बेहद मुकम्मल जीवनी का काम भी दे सकता है क्योंकि इसमें स्वर्गीया की आयु, दुर्भाग्य, वज़न और डील-डौल से सम्बंधित अत्यंत अर्थगर्भित संकेत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त इस बात का प्रमाण भी मिलता है कि अनंतयात्रा के पथिक ने यातायात का वही सस्ता व सर्वोत्तम साधन चुना जिसकी ओर 'मीर' संकेत कर चुके हैं:

---

[i] हंड-कुलहियाः बच्चियों का एक खेल जिसमें वे गुड्डे-गुड़ियों की शादियाँ करती हैं और खाने पकाती हैं। (अनु.)

[ii] क़दमचाः शौचालय के अन्दर वह हिस्सा जिसपर पाँव रखकर पाखाना करते हैं; खुड्डी का पाखा (अनु.)

[iii] मुसलमानों की एक धारणा के अनुसार गुनाहगार मुर्दे का वज़न बहुत भारी हो जाता है और जन्नती का हल्का (अनु.)

तेरी गली में सदा ऐ कुशिन्दा-ए-आलम[i]
हज़ारों आती हुई चारपाइयाँ देखीं

क़ुदरत ने अपनी कृपा से सफ़ाई का कुछ ऐसा प्रबंध कर रखा है कि हर एक चारपाई को साल में कम-से-कम दो बार खौलते पानी से धारने की ज़रुरत पेश आती है। जो नफ़ासत-पसंद हज़रात जान लेने का यह तरीक़ा उचित नहीं समझते वे चारपाई को उल्टा करके चिलचिलाती धूप में डाल देते हैं। फिर दिन भर घर वाले खटमल और मोहल्ले वाले इबरत (नसीहत) पकड़ते हैं। अन्तर्दर्शी पुरुष चारपाई की चूलों में रहने वाले प्राणी के आकार और रंगत से ही सोने वालों की सेहत और वंशावली का अनुमान करते हैं (स्पष्ट रहे कि यूरोप में घोड़ों और कुत्तों के सिवा, कोई किसी की वंशावली नहीं पूछता) उल्टी चारपाई को कोरांटीन (संघरोध) का प्रतीक जानकर राहगीर रास्ता बदल दें तो आश्चर्य नहीं। हद यह है कि फ़क़ीर भी ऐसे घरों के सामने आवाज़ लगाना बंद कर देते हैं।

चारपाई से जो रहस्यमय आवाज़ें निकलती हैं, उनका-उद्गम स्थल पता लगाना उतना ही कठिन है जितना कि बरसात की अंधेरी रात में यह खोज लगाना कि मेंढक के टर्राने की आवाज़ किधर से आई या यह पता लगाना कि आधी रात को बिलबिलाते दूध पीते बच्चे के दर्द कहाँ उठ रहा है। चरचराती हुई चारपाई को मैं *न गुल-ए-नग़मा समझता हूँ न पर्दा-ए-साज़, और न अपनी शिकस्त की आवाज़*[ii]! दरअसल यह आवाज़ चारपाई के अपने स्वास्थ की घोषणा है क्योंकि इसके टूटते ही यह बंद हो जाती है। इसके अतिरिक्त एक स्वचालित अलार्म की हैसियत से यह रात्रि-जागरण और तड़के जागने में मदद देती है। कुछ चारपाइयाँ इतनी चुग़ुलख़ोर होती हैं कि ज़रा करवट बदलें तो दूसरी चारपाई वाला मन्त्र पढ़ता हुआ हड़बड़ाकर उठ बैठता है। अगर पाँव भी सिकोड़ें तो कुत्ते इतने ज़ोर से भौंकते हैं कि चौकीदार तक जाग उठते हैं। इससे यह फ़ायदा ज़रूर होता है कि लोग रात भर न सिर्फ़ एक दूसरे की जान-व-माल बल्कि चालचलन की भी चौकीदारी करते रहते हैं। अगर ऐसा नहीं है तो फिर आप ही बताइए कि रात को आँख खुलते ही नज़र सबसे पहले पास वाली चारपाई पर क्यों जाती है?

(चिराग़ तले)

---

[i] कुशिन्दा-ए-आलमः सारी दुनिया का/की क़ातिल; माशूक़ (अनु.)

[ii] न गुल-ए-नग़मा हूँ न पर्दा-ए-साज़// मैं हूँ अपनी शिकस्त की आवाज़ (मिर्ज़ा ग़ालिब.)
मैं न तो एक मनभावन सुरीला गीत हूँ न साज़ का पर्दा (key), मैं अपने ही टूटन की आवाज़ हूँ। (अनु.)